E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2023; 5(12): 51-52
Received: 21-10-2023
Accepted: 27-11-2023

कुणाल किशोर
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार, भारत

डॉ. राकेश कुमार रंजन
शोध–निर्देशक एवं सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार, भारत

Corresponding Author:
कुणाल किशोर
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार, भारत

इक्कीसवीं सदी का हिन्दी उपन्यास में आदिवासी जीवन

कुणाल किशोर, डॉ. राकेश कुमार रंजन

DOI: https://doi.org/10.33545/27068919.2023.v5.i12a.1113

सारांश
आदिवासी या जनजाति का जीवन संस्कृत साहित्य में दिखाई पड़ता हैं। वेदों पुराणों उपनिषदों के साथ–साथ रामायण, महाभारत में भी आदिवासी समाज के बारे में चर्चा किये गये हैं। इन साहित्यों में असुर, राक्षस, वानर, निषाद का शब्द आदिवासियों के लिए प्रयुक्त हुये हैं।
1900 ई0 से आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास साहित्य हमे व्यापक रूप में देखने को मिलते हैं। वैसे अंग्रेज लेखकों द्वारा आदिवासी जीवन पर बहुत अधिक सामग्री इक्कठा किये हैं। जिसमें उनके रीति–रिवाज का उल्लेख किया गया हैं। ''आदिवासियों से सम्बधित विवरण अधिकतर अंग्रेज लेखकों द्वारा एकत्र की हुई सामग्री पर अधारित हैं और इनमें सिर्फ इनके रीति–रिवाजों का सरसरी तौर पर मात्र उल्लेख किया गया हैं। इस उल्लेख से मुख्यधारा का समाज उनकी खास विशेषताओं से परिचित हो पाया। शिक्षित जनों को एक ओर भारत को देखने का मौका मिला, जिसकी चर्चा उनके साहित्य में और राजनीतिक लेखकों में कम होती हैं।[1]

कुटशब्दः आदिवासी, संस्कृति, शोषण, उपन्यास

प्रस्तावना
आदिवासी और गैर आदिवासियों के जीवन को गहराई से देखकर साहित्य की रचना किये हैं। आदिवासियों का मूल जीवन छल–कपट और विश्वास घात से कोसों दूर हैं। हालांकि वर्तमान समय में समाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से ये पतित हुये हैं। आदिवासी में सामुहिकता की भावना ही व्यक्तियों को समुह में बाँधकर रखती हैं। और उन्हें समुह द्वारा निर्विष्ट व्यवहार प्रतिमान के अनुसार कार्य करने को बाहय करती हैं, किन्तु जब व्यक्ति अपने स्वार्थ को समूह के स्वार्थ से अधिक महत्व देता है तो वह समुह की उपेक्षा करता हैं और इस प्रकार समाजिक विघटन की प्रक्रिया को बल मिलता हैं।''[2]रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद और वेदों में आदिवासियों का उल्लेख किया गया हैं। रामायण में शबरी जैसे पात्र की चर्चा किया गया हैं। आधुनिक काल में प्रेमचंद ने आदिवासियों पर चर्चा कियें हैं। उनके सद्गति कहानी में चिखुरी गोंड के चरित्र सृजन किया है जो आदिवासी है और दुःखी को पंडित धासीराम की प्रताड़ना को बचाना चाहता हैं। उन्होंने ब्राह्मणवाद के विरूद्ध बिगुल फूँकने का प्रयास किया हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हिरऔंध' और 'ब्रजनंदन सहाय' ने 'अधखिला फूल' और 'अरूणबाला' में आदिवासियों के जीवन के बारे में लिखा हैं।
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अत्मा कबुतरी' में कबूतरा नामक आदिवासी समाज के दुःख–दर्द का वर्णन हुआ हैं। सभ्य समाज, जिसे आदिवासियों की भाषा में 'कज्जा' कहा जाता हैं, इनके द्वारा दी जाने वाली प्रताड़ना का धार्मिक चित्रण आत्मा कबूतरी में देखा जा सकता हैं। मैत्रीयी पुष्पा ने अपने नायिका अत्मा के बारे में लिखी हैं कि– ''अल्मा माने आत्मा, बप्पा ने सोच – समझकर नाम रखा था कहते हैं आत्मा नहीं मरती।''[3]
आदिवासी उपन्यासों में जहाँ आदिवासियों के संघर्ष और दुःख की गाथा है, वहीं इस बात का भी वर्णन है कि ये अपनी संस्कृति से आपार प्रेम करते हैं। इनके अपने नृत्य होते हैं। 'राजेन्द्र अवस्थी' के उपन्यास 'जंगल के फूल' में गोड जाति के आदिवासियों के लोकनृत्य का सुन्दर वर्णन हैं। एक–दूसरे से हाथों को जोड़े चारों ओर घेरे में जब ये आदिवासी नृत्य करते हैं तो देखते ही बनता हैं। 'राजेन्द्र अवस्थी के शब्दों में देखते–देखते वहाँ नाच–गाने का खास मजमा जम गया और मजमें में जब सब खो गए तो सुलकसाए ने गले से ढ़ोल का कँदा निकाल कर फगरू के गले में डाल दिया फगरू के नंगे हाथ ढ़ोल के चमड़ें पर थाप देने लगे।''[4]
वर्तमान समय में आदिवासी न तो अपनी संस्कृति को छोड़ना चाहते हैं और न अपनी जीवन शैली को परिवर्तित करना चाहते हैं, पर उनका खिंचाव पश्चिमी सभ्यता की ओर भी हो रहा हैं, इसका चित्र 'सतीश दूबे' के उपन्यास 'कुर्रारी' में उपलब्ध हैं। संजीव के उपन्यास 'पाँव तले दूब' में आदिवासियों की दीन–हीन दषा का चित्रण हैं।

अधिकांश आदिवासियों के पास न पहनने को ढंग के वस्त्र है और न भुख मिटाने के लिए प्रचुर भोजन। ''संजीव के उपन्यासों में जंगल तथा पहाड़ों में कबीलाई पद्धति से जीवन जीने वाले संथाल, थारू, जुआंग आदि आदिवासियों की जनजातियों की दीन–हीन तथा दयनीय अवस्था का यथार्थ चित्रण हुआ हैं। उनके पास न रहने के लिए घर है, न तन ढँकने के लिए कपड़ा और न पेट भरने के लिए दो वक्त की रोटी। उनका समग्र जीवन भौतिक सुविधा से दूर अन्न की खोज में भुखमरी तथा कुपोषण से ग्रस्त हैं। गरीबी, अनपढ़, अज्ञानी एवं अरूयमुखी संस्कृति के कारण उनके जीवन में अभाव ही अभाव हैं।[5] इक्कीसवी सदी के उपन्यासकासें ने उपेक्षित आदिवासियों के जीवन को अपने–अपने उपन्यासों के माध्यम से स्पष्ट कर दिया हैं। कुल मिलाकर आदिवासियों का जीवन कष्टों से भरा हैं। पलामु क्षेत्र के उराँव जाति आदिवासी, जो सोनाउ, लधूंगा आदि गाँवों में रहते हैं, 'मनमोहन पाठक' के 'गगन घटा घहरानी' के अनुसार रामसाब जगधारी राय जैसे लोग इनके लिए एक समस्या हैं, जिन्होंने चीता भी पाल रखा है और भय का साम्राज्य कायम रखते हैं। निर्धनता के कारण ये आदिवासी बन्धुआ मजदूर की भाँति दिन–रात परिश्रम करते हैं। यही गरीबी इन्हें अपना गाँव छोड़ने पर विवश करती हैं।

आदिवासियों के लिए पंचायत का बड़ा ही महत्व होता हैं। इनकी विशेषता यह होती हैं कि परस्पर परामर्श कर ये झगड़ों को सुलझाते हैं। 'वीरेन्द्र जैन' के 'पार उपन्यास में आदिवासियों की पंचायत का वर्णन हैं। 'पार' में निर्मल साव नाम का पात्र खलनायक के रूप में है जो आदिवासी स्त्रियों को खरीदने–बेचने का कार्य करता हैं। यह आदिवासियों का पूर्ण शोषण करता हैं। 'पार' उपन्यास में जीरोन खेरा ग्राम की महिलाओं का वर्णन है, जो तेल, नमक, गोंद, खिवनी, महुआ, चिरौंजी का विक्री कर अपना और अपने परिवार का जीवन–यापन करती हैं। ये महिलाएँ बाहर जाकर नाक, कान छेदना और गोदना गोदने जैसा काम करती हैं। ये तेंदु पत्ता जलावन और लकड़ी भी बेंचती हैं। माते इस उपन्यास का नायक है, जो आदिवासियों की मदद करता हैं। इसमें सरकार के ढ़ोल की पोल भी खोली गई हैं।

'तेजिन्दर' कृत 'कोलापादरी' में धर्मान्तरण की समस्या पर प्रकाश डाला गया हैं। पेट की आग बड़ी भयानक होती हैं। भूख की मार व्यक्ति से हर प्रकार का कार्य करा सकती हैं। इस उपन्यास का मुख्य पात्र हैं जेम्स खाखा, जो पहले तो आदिवासी था, पर उसने ईसाई धर्म अपना लिया था। किस प्रकार भोले–भाले आदिवासी भूख के कारण धर्म परिवर्तन कर लेते हैं, यही इस उपन्यास में दिखाया गया हैं। दवा के अभाव में तड़पते बीमारों को पैसे का लालच देकर ईसाई बनाने की घटना इस उपन्यास में चित्रित हैं।'' खाखा फादर को कहता हैं, ''क्या यह सच नहीं कि हमारी इमेंजेज में पहाड़ थे, नदिया थीं, पेड़ थे, शेर थे, चीते थे और राधा ने हमें बन्धुआ बना दिया, फिजिकली और इकोनॉमिकली एक्सप्लायर किया, लेकिन आपने क्या किया? ये रादर रेम्स अस, आपने हमें पालतू बना दिया, हमारे लिये हिन्दु फडामेटलिस्टों और आपमें कोई फर्क नहीं हैं। हमारी इमेजेज छीन ली आप लोगों ने।''[6]

'श्री प्रकाश मिश्रा' ने 1997 ई0 में 'जहाँ बाँस फूलते' है उपन्यास की रचना की और इसके माध्यम से मिजो में स्थित लुटोइयों आदिवासियों के जीवन की त्रासदी को उजागर किया। इनके परिश्रम का फल जमींदार ले जाते हैं और ये कुछ नहीं कर पाते हैं। यह इनकी विवशता हैं। खेतिहर आदिवासियों की फसलें काटकर कोई ले जाए और ये भूख से तड़पे, इससे दुःखद स्थिति और क्या हो सकती हैं। भूख का मारा मिजो कुछेक वर्षो तक इन्तजार करता था, फिर जंगल को साफ कर धान लगा दिया जाता था, फसल जब कटने को तैयार होने को होती थी, तब अपनी झोपड़ी बनाता था, फिर एक रात को इलाके के पुराने जमींदार रामनाथ लटकर और मुश्ताक खाडकर अपने साथियों के साथ आ धमकते, इनके घरों को उजाड़ फसल काटकर ले जाते और खेती लायक जमीन दो चार साल के लिए कब्जा कर लेते थे।[7]

आदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या रोजगार और भूख की हैं। उड़ीसा के सुंदरगढ़ी, बिहार के कैमूर, झारखण्ड के पलामू क्षेत्र के आदिवासियों के पास भोजन का आभव हैं। अक्षर ज्ञान की जानकारी नहीं होना और इनकी अज्ञानता जमीन लूट और विनाश का कारण बना। 'बही खतिहान और कागजातों ने आदिवासियों का बहुत बुरा किया हैं। सीधे–सादे सच्चे वनवासी अक्षर ज्ञान की शक्ति से आज भी जुदा हैं। इस समाज में शिक्षा की पहुँच सीधे और सादे ढंग से नहीं हुई है और कोर्ट–कचहरी की भाषा से वे सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं तो अंगुठे के ठप्पे लगवाकर उनकी जमीन से लेकर जोरू तक ठेकेदारों ने अपने कब्जे में ले लिया। इतना ही नहीं, दुर्गम इलाके के नक्शे पर जरूर उभर आए मगर भूख, गरीबी, अकाल–मौत वे उन इलाकों को साथ नहीं छोड़ा।[8]

रगेन्द्र के 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में असुर आदिवासी की गाथा है। इसमें आदिवासियों की शोषण की कथा हैं। 'अरण्य में सूरज' उपन्यास में भील आदिवासी को केंन्द्र में रखकर रचित गयी उपन्यास हैं। इस उपन्यास में बाल–विवाह कुप्रथा का वर्णन हैं। इस उपन्यास में पुरूषों की दशा का वर्णन उपन्यासकार श्रीमती अजीत गुप्ता ने किया हैं।

निष्कर्षः

आदिवासी समाज को बाजारवाद और विकास के नाम पर सताये गये हैं। पुँजीवाद ने इन्हें हासिये पर लाकर खड़ा कर दिया हैं। आजाद भारत में इन्हें कमतर महत्व दिया गया हैं। इन्ही जनसमस्याओं को केन्द्र में रखते हुए हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी रचनाधर्मिता को निभाया हैं। आदिवासी उपन्यासों में किसी आदिवासी पहुल स्थान विशेष की समस्याओं का चित्रण पारंभिक आदिवासी उपन्यासकारों ने किया। बाद में क्षेत्रगत समस्याओं पर लिखा और पढ़ा गया। इनके गुमनाम इतिहास को खोजने का भरकस प्रयास हिन्दी उपन्यासों में किया गया हैं। देश की बड़ी आबादी आदिवासियों की हैं, जो आजाद भारत में समस्याओं से जुझ रही हैं। नये हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी केन्द्रित उपन्यासकारों ने इनके मूलभूत समस्याओं को देखा, जाना और समाज के सामने अपनी लेखनी किया।

संदर्भ

1. (रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाश, नयी दिल्ली, 2018 पृ0 सं0 – 175।
2. डॉ0 सत्येन्द्र त्रिपाठी, समाजिक विघटन; उतर प्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1973, पृ0 सं0 – 23।
3. मैत्रीयी पुष्पा, आत्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, प्रा0 लि01–बी0 नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज नई दिल्ली 11053, छठा संस्करण 2016, पृ0 सं0–347
4. राजेन्द्र अवस्थी, जंगल के फूल, राजकमल एण्ड् संस, नई दिल्ली, 2006 पृ0 सं0 – 16
5. डॉ0 रमेश सम्मधी कुरे, आदिवासी साहित्य विविध आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2023 पृ0 सं0 – 139
6. तेजिंदर, काला पानी साहित्य भण्डार, नई दिल्ली 2016, पृ0 सं0 – 45
7. श्री प्रकाश मिश्रा, जहाँ बाँस फूलते हैं, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996, पृ0 सं0 – 69
8. अमरेन्द्र किशोर, जंगल–जंगल लूट मची है, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005 पृ0 सं0 – 24